कुंजड़-कसाई

हिन्दी ADDA

अनवर सुहैल

कुंजड़-कसाई

'कुंजड़-कसाइयों को तमीज कहाँ... तमीज का ठेका तो तुम्हारे सैयदों ने जो ले रक्खा है?' मुहम्मद लतीफ कुरैशी उर्फ एम एल कुरैशी बहुत कम बोला करते। कभी बोलते भी तो कफन फाड़कर बोलते। ऐसे कि सामने वाला खून के घूँट पीकर रह जाए।

जुलेखा ने घूर कर उन्हें देखा। हर कड़वी बात उगलने से पहले उसके शौहर लतीफ साहब का चेहरा तन जाता है। कष्ट या आनंद का कोई भाव नजर नहीं आता। आँखें

फैल जाती हैं और जुलेखा अपने लिए ढाल तलाशने लग जाती है। वह जान जाती कि मियाँ की जली-कटी बातों के तीर छूटने वाले हैं।

मुहम्मद लतीफ कुरैशी साहब का चेहरा अब शांत था। इसका सीधा मतलब ये था कि तीर चलाकर, प्रतिद्वंद्वी को घायल करके वह मुतमइन हो गए हैं।

जुलेखा बीवी चिढ़ गईं - 'सैयदों को काहे बीच में घसीट रहे हैं, हमारे यहाँ जात-बिरादरी पर यकीन नहीं किया जाता।'

लतीफ कुरैशी ने अगला तीर निशाने पर फेंका - 'जब जात-पात पर यकीन नहीं तो तुम्हारे अब्बू-अम्मी अपने इकलौते बेटे के लिए बहू खोजने के लिए अपनी बिरादरी में बिहार क्यों भागे फिर रहे हैं? क्या इधर की लड़कियाँ बेशऊर होती हैं या इधर की लड़कियों का हड्डी-खून-तहजीब बदल गया है?'

जुलेखा सफाई देने लगी - 'वो बिहार से बहू काहे लाएँगे, जब पता ही है आपको, तो काहे ताना मारते हैं। अरे... मम्मा, नन्ना और चच्चा लोगों का दबाव भी तो है कि बहू बिहार से ले जाना है।'

'वाह भई वाह, खूब कही। लड़का ब्याहना है तो मम्मा, चच्चा का दबाव पड़ रहा है, शादी खानदान में करनी है। अगर लड़की की शादी निपटानी हो तो नौकरी वाला लड़का खोजो। जात चाहे जुलहा हो या कुंजड़-कसाई। जो हो सब चलेगा। वाह भई वाह... मान गए सैयदों का लोहा!'

जुलेखा निःशस्त्र हो गई। स्त्री-सुलभ ब्रह्मास्त्र उसके पास प्रचुर मात्रा में है, जिसे 'अश्रु-शास्त्र' भी कहा जाता है। मर्द इन आँसुओं से घबरा जाते हैं। लतीफ कुरैशी भी अपवाद न थे। जुलेखा के इस ब्रह्मास्त्र से वह घबराए। सोचा प्रहार कुछ ज्यादा ही सख्त हुआ लगता है। मामला रफा-दफा करने के लिहाज से उन्होंने कुछ सूत्र वाक्य बुदबुदाए -'बात तुम्हीं छेड़ती हो और हार कर रोने लग जाती हो। तुम्हें यह क्या कहने की जरूरत थी कि इधर एमपी-छत्तीसगढ़ की लड़कियाँ, बेच-खाने वाली होती हैं। कंगाल बना देती हैं। तुम्हारा भाई कंगाल हो जाएगा। माना कि तुम्हारे ननिहाल-ददिहाल का दबाव है, जिसके तहत तुम लोगों को यह शादी अपने ही खानदान में करनी पड़ रही है। बड़ी मामूली बात ठहरी। चलो चाय बना लाओ जल्दी से...!'

जुलेखा ने आँसू पीकर हथियार डाल दिए - 'हर माँ-बाप के मन में ख्वाहिश रहती है कि उनकी लड़की जहाँ जाए, राज करे। इसके लिए कैसा भी समझौता हो करना ही पड़ता है।'

'समझौता!' लतीफ एक-एक लफ्ज चबा कर बोले।

बात पुनः तन गई।

'वही तो... वही तो मैं कह रहा हूँ कि समझौता करना पड़ता है। और जानती हो, समझौता मजबूरी में किया जाता है। जब इनसान अपनी कुव्वत-ताकत से मजबूर होता है तो समझौता करता है। जैसे...!'

जुलेखा समझ गई। कड़ुआहट की आग अभी और भड़केगी।

'हमारा रिश्ता भी इसी नामुराद 'समझौते' की नींव पर टिका है। एक तरफ बैंक में सर्विस करता कमाऊ कुंजड़-कसाई बिरादरी का दामाद, दूसरी तरफ खानदान और हड्डी-खून-नाक का सवाल। मामला लड़की का था, पराए धन का था इसलिए कमाऊ दामाद के लिए तुम्हारे घर वालों ने खानदान के नाम की कुर्बानी दे ही दी।'

जुलेखा रो पड़ी और किचन की तरफ चली गई। मुहम्मद लतीफ कुरैशी साहब बेंत की आराम कुर्सी पर निढाल पसर गए। उन्हें देख कर ऐसा लग रहा था, जैसे जंग जीत कर आए हों और थकावट दूर कर रहे हों। सैयद वंशीय पत्नी जुलेखा को दुख पहुँचा कर इसी तरह का 'रिलेक्स' अनुभव किया करते हैं वो। इकलौते साले साहब की शादी की खबर पाकर इतना 'ड्रामा' खेलना उन्हें मुनासिब लगा था।

जुलेखा के छोटे भाई जावेद के लिए उनके अपने रिश्तेदारों ने भी मंसूबे बांधे थे। इकलौता लड़का, लाखों की जमीन-जायदाद। जावेद के लिए लतीफ के चाचा ने प्रयास किया था। लतीफ के चाचा, शहडोल में सब-इंस्पेक्टर हैं तथा वहीं गाँव में काफी जगह-जमीन बना चुके हैं। एक लड़की और एक लड़का। कुल दो संतान। चाचा चाहते थे कि लड़की की शादी यथासंभव अच्छी जगह करें। लड़की भी उनकी गुणी ठहरी। बीएससी तक तालीम। नेक सीरत, भली सूरत, फने-खानादारी, सौमो-सलात की पाबंद, लंबी, छरहरी, पाकीजा और ब्यूटीशियन का कोर्स की हुई लड़की के लिए चाचा ने की चक्कर जुलेखा के अब्बू सैयद अब्दुल सत्तार के घर काटे चुके थे। हर बार यही जवाब मिलता कि लड़के का अभी शादी का कोई इरादा नहीं है।

एक बार मुहम्मद लतीफ कुरैशी साहब, जब अपनी ससुराल में थे तब अपने कानों से उन्होंने सुना था - 'ये साले कुंजड़-कसाई क्या समझ बैठे हैं हमें? लड़की क्या दी, इज्जत भी दे दी क्या?' उँगली पकड़ाई तो लगे पहुँचा पकड़ने। भला इन दलिद्दरों की लड़की हमारी बहू बनेगी? हद हो गई भई।'

ये बात जुलेखा के मामा कह रहे थे। लतीफ साहब उस वक्त बेडरूम में लेटे थे। लोगों ने समझा कि सो गए हैं वो, इसलिए ऊँची आवाज में बहस कर रहे थे। जुलेखा के अब्बू ने मामा को डाँट कर चुप कराया था।

लतीफ अपमान का घूँट पीकर रह गए।

तभी तो उस बात का बदला वह उस खानदान की बेटी, यानी उनकी पत्नी जुलेखा से लेना चाह रहे थे। ले-देकर आज तवा गरमाया तो कर बैठे प्रहार! जुलेखा को दुख पहुँचाकर, भारतीय इस्लामी समाज में व्याप्त ऊँच-नीच की बुराई पर कुठाराघात करने का उनका यह प्रयास कितना ओछा, कितना शर्मनाक था, इससे क्या मतलब? उनका उद्देश्य था कि जैसे उनका दिल दुखा, वैसे ही किसी और का दुखे। दूसरे का दुख उनके अपने दुख के लिए मलहम बन गया था।

जुलेखा की सिसकियाँ किचन के पर्दे को चीरकर बाहर निकल रही थीं। बेटा-बेटी शॉपिंग के लिए सुपर-मार्केट गए हुए थे। घर में शांति बिखरी हुई थी। इसी शांति को भंग करती सिसकियाँ लतीफ साहब के थके जिस्म के लिए लोरी बनी जा रही थीं।

मुहम्मद लतीफ कुरैशी साहब को यूँ महसूस हो रहा था, जैसे सैयदों, शेखों की तमाम गर्दन अकड़ू जातियाँ रो रही हों, पश्चाताप कर रही हों।

अरे! उन्हें भी किशोरवय तक कहीं पता चल पाया था कि वे कसाइयों के खानदान से ताल्लुक रखते हैं। वे तो बस इतना जानते थे कि 'एक ही सफ में खड़े महमूदो-अयाज' वाला दुनिया का एकमात्र मजहब है इस्लाम। एक नई सामाजिक व्यवस्था है इस्लाम। जहाँ ऊँच-नीच, गोरा-काला, स्त्री-पुरूष, छोटा-बड़ा, जात-पात का कोई झमेला नहीं है। कहाँ महमूद जैसा बादशाहे-वक्त, और कहाँ अयाज जैसा मामूली सिपाही, किंतु नमाज के समय एक ही सफ में खड़ा किया तो सिर्फ इस्लाम ही ने दोनों को।

उनके खानदान में कोई भी कसाइयों का धंधा नहीं करता। सभी सरकारी मुलाजमत में हैं। सरगुजा के अलावा बाहरी रिश्तेदारी से लतीफ के वालिद साहब ने कोई संबंध नहीं

रखा था। लतीफ के वालिद का एक ही ध्येय था, तालीम हासिल करो। किसी भी तरह इल्म हासिल करो। सो लतीफ इल्म हासिल करते-करते बैंक में अधिकारी बन गए। उनके वालिद साहब भी सरकारी मुलाजिम थे, रिटायरमेंट के बाद भी वे अपने खानदानी रिश्तेदारों से कटे ही रहे।

लतीफ, क्लास के अन्य कुरैशी लड़कों से कोई संबंध नहीं बना पाए थे। ये कुरैशी लड़के पिछली बेंच में बैठने वाले बच्चे थे, जिनके दुकानों से गोश्त खरीदने कभी-कभी वह भी जाया करते थे। लगभग सभी कुरैशी सहपाठी मिडिल स्कूल की पढ़ाई के बाद आगे न पढ़ पाए।

तब उन्हें कहाँ पता था कि कुरैशी एक जातिसूचक पुछल्ला है, जो उनके नाम के साथ उनकी सामाजिक हैसियत को जाहिर करता है। वे तो वाज-मीलाद वगैरा में बैठते तो यही सुनते कि पैगंबर साहब का ताल्लुक अरब के कुरैश कबीले से था। उनका बालमन यही गणित लगाया करता था कि वही कुरैशी खानदान के लोग कालांतर में जब हिंदुस्तान आए होंगे तो उन्हें कुरैशी कहा जाता होगा। ठीक उसी तरह जैसे पड़ोस के हिंदू घरों की बहुओं को उनके नाम से नहीं बल्कि उनके गृहनगर के नाम से संबोधित किया जाता है। जैसे कि बिलासपुरहिन, रायपुरहिन, सरगुजहिन, कोतमावाली, पेंडरावाली, कटनहिन आदि।

कुछ बड़े व्यवसायिक मुस्लिम घरानों के लोग नाम के साथ इराकी शब्द जोड़ते, जिसका अर्थ लतीफ ने यह लगाया कि हो न हो इन मुसलमानों का संबंध इराक के मुसलमानों से हों कुछ मुसलमान खान, अन्सारी, छीपा, रजा इत्यादि उपनाम से अपना नाम सजाया करते। बचपन में अपने नाम के साथ लगे कुरैशी उपनाम को सुनकर वह प्रसन्न हुआ करते। उन्हें अच्छा लगता कि उनका नाम भी उनके जिस्म की तरह पूर्ण है। कहीं कोई ऐब नहीं। कितना अधूरा लगता यदि उनका नाम सिर्फ मुहम्मद लतीफ होता। जैसे बिना दुम का कुत्ता, जैसे बिना टाँग का आदमी, जैसे बिना सूंड़ का हाथी।

बचपन में जब भी कोई उनसे उनका नाम पूछता तो वह इतराकर बताया करते -'जी मेरा नाम मुहम्मद लतीफ कुरैशी है।'

यही कुरैशी लफ्ज का पुछल्ला उनके विवाह का सबसे बड़ा शत्रु साबित हुआ। जब उनकी बैंक में नौकरी लगी तो कसाई-चिकवा घरानों से धड़ाधड़ रिश्ते आने लगे। अच्छे पैसे वाले, शान-शौकत वाले, हज कर आए कुरैशी खानदानों से रिश्ते ही रिश्ते। लतीफ के अब्बू उन लोगों में अपना लड़का देना नहीं चाहते थे क्योंकि तमाम

धन-लोलुप, धनाढ्य कुरैशी लोग, संस्कार, शिक्षा के मामले में शून्य थे। पैसे से मारुति आ सकती है सलीका नहीं।

इस बीच शहडोल के एक उजाड़ सैयदवंशीय मुस्लिम परिवार से लतीफ साहब के लिए पैगाम आया। उजाड़ इन अर्थों में कि यूपी-बिहार से आकर मध्यप्रदेश के इस बघेलखंड में आ बसे जुलेखा के पिता किसी जमाने में अच्छे खाते-पीते ठेकेदार हुआ करते थे। आजादी से पूर्व और उसके बाद की एक-दो पंचवर्षीय योजनाओं तक जुलेखा के पिता और दादा वगैरा की जंगल की ठेकेदारी हुआ करती थी। जंगल में पेड़ काटने की प्रतिस्पर्धा चलती। सरकारी मुलाजिम और ठेकेदारी मजदूरों में होड़ मची रहती। कौन कितने पेड़ काट गिराता है। ट्रकों लकड़ियाँ अंतर्राज्यीय स्मगलिंग के जरिए इधर-उधर की जातीं। खूब चटकी थी उन दिनों। उसी कमाई से शहडोल के हृदय-स्थल पर पहली तीन मंजिली इमारत खड़ी हुई जिसका नामकरण हुआ था 'सैयदाना'। ये इमारत जुलेखा के दादा की थी। आज तो कइी गगनचुंबी इमारतें हैं किंतु उस जमाने में जुलेखा का पैतृक मकान प्रसिद्ध हुआ करता था। आस-पास के लोग उस इमारत 'सैयदाना' का इस्तेमाल अपने घर के पते के साथ किया करते थे। स्थानीय और प्रादेशिक स्तर की राजनीति में भी सक्रियता थी इस भवन की। फिर यहाँ मारवाड़ी आए, सिक्ख आए, प्रतिस्पर्धा बढ़ी। मुनाफा कई हाथों में बँटा। जुलेखा के खानदान वालों की मोनोपोली समाप्त हुई। कुकुरमुत्तों की तरह नगर में भव्य इमारतें तनने लगीं।

जुलेखा के अब्बू यानी सैयद अब्दुल सत्तार या यूँ कहें कि हाजी सैयद अब्दुल सत्तार साहब की प्रगति का ग्राफ अचानक भरभराकर नीचे गिरने लगा। जंगलात के ठेकेदारी में माफिया आ गया। धन-बल और बाहुबल दोनों की जोर-आजमाइश हुई। हाजी साहब लकवाग्रस्त हुए। चाचाओं और चचेरे भाइयों में दादा की संपत्ति को लेकर विवाद हुए। झूठी शान को बरकरार रखने में हाजी अब्दुल सत्तार साहब का जमा धन खर्च होने लगा। देह दुर्बल हुई। बोलते तो स्वर लड़खड़ा जाता। व्यापार की नई तकनीक आ जाने से, पुरानी व्यापारिक पद्धति वाले व्यवसाइयों का अमूमन जो हश्र होता है, वही हाजी साहब का हुआ।

डूबती कश्ती में अब जुलेखा थी, उसकी एक छोटी बहिन थी और एक किशोरवय भाई। बड़ी बहन का विवाह हुआ तो सैयदों में ही लेकिन पार्टी मालदार न थी। दामाद थोक कपड़े का व्यवसायी था और विधुर था। जुलेखा की बड़ी बहन वहाँ काफी खुश थी। जुलेखा जब राजनीतिशास्त्र में एम.ए. कर चुकी तो पिता हाजी साहब चिंतित हुए। खानदान में ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की की उतनी डिमांड न थी। लड़के ज्यादातर

व्यवसायी थे। जुलेखा को ब्याहना निहायत जरूरी था, क्योंकि छोटी लड़की कमरून भी तैयार हुई जा रही थी। तैयार क्या वह तो जुलेखा से भी ज्यादा भरे बदन की थी। दो साल का अंतर मात्र था उनकी उम्र में। दो-दो जवान लड़कियों का बोझ हाजी साहब की लकवाग्रस्त देह बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी।

उनके एक मित्र हुआ करते थे अगरवाल साहब। जो कि फॉरेस्ट विभाग के मुलाजिम थे। हाजी साहब के स्याह-सफेद के राजदार! उन्हीं अगरवाल साहब ने सुदूर सरगुजा में एक बेहतरीन रिश्ता सुझाया। हाजी साहब उन पर बिगड़े। जमीन पर थूकते हुए कहा - 'लानत है आप पर, अगरवाल साहेब कुंजड़-कसाइयों को लड़की थोड़े ही दूँगा। घास खा कर जी लूँगा। लेकिन खुदा ऐसा दिन दिखाने से पहले उठा ले तो बेहतर...'

कुछ रुककर कहा था उन्होंने - 'अरे भाई, सैयदों में क्या लड़कों की महामारी हो गई है?'

अगरवाल साहब बात सँभालने लगे - 'मैं ये कब कह रहा हूँ कि आप अपनी लड़की की शादी वहीं करिए। हाँ, थोड़ा ठंडे दिमाग से सोचिए। मैं उन लोगों को अच्छी तरह जानता हूँ। पढ़ा-लिखा, संस्कारित घराना है। लड़का बैंक में अधिकारी है। कल को आला-अफसर बनेगा। महानगरों में रहेगा।'

अगरवाल साहब टेप-रिकार्डर की तरह विवरण उगलने लगे। उन्हें हाजी साहब नामक इमारत की जर्जर दीवार, छतों और हिलती नींव का हाल मालूम था। वह अच्छी तरह जानते थे कि विवाह योग्य बेटियों के विवाह की चिंता में हाजी साहब अनिद्रा के रोगी भी हुए जा रहे हैं। एकांतप्रिय एवं आर्थिक मार ने उन्हें इस समय वृद्ध कर दिया था। उनका इलाज चल रहा था। एलोपैथी, होमियोपैथी, झाड़-फूँक, गंडा-तावीज, पीर-फकीरी और हज-जियारत जैसे नुस्खे आजमाए जा चुके थे। मर्ज अपनी जगह और मरीज अपनी जगह। घट रहा था तो सिर्फ जमा किया धन और बढ़ रही थीं चिंताएँ।

एक दो रोज के बाद अगरवाल साहब की बात पर हाजी साहब गौरो-फिक्र करने लगे। हाजी साहब की चंद शर्तें थीं, जो रस्सी के जल जाने के बाद बची ऐंठन की तरह थीं।

इन शर्तों में अव्वल तो यह कि शादी के निमंत्रण-पत्रों में वर-वधू पक्ष का उपनाम लिखाही न जाए। न तो हाजी सैयद अब्दुल सत्तार अपने नाम के आगे सैयद लगाएँ और न ही लड़के वाले अपना 'कुरैशी' टाइटिल जमाने के आगे जाहिर करें। शादी 'शरई'

रिवाज से हो। कोई ताम-झाम, बैंड-बाजा नही। दस-बारह बराती आएँ। दिन में विवाह हो, दोपहर में खाना और शाम होते तक रुखसती।

एक और खास शर्त यह थी कि निकाह के अवसर पर कितना ही लोग पूछें, किसी से भी कुरैशी होने की बात न बताई जाए।

लतीफ और उसके पिता को ये तमाम शर्तें अपमानजनक लगीं लेकिन आला दर्जे के खानदान की तालीमयाफ्ता नेक-सीरत लड़की के लिए उन लोगों ने अंततः ये अपमानजनक समझौता स्वीकार कर लिया। अगरवाल साहब के बहनोई सरगुजा में थे और लतीफ के पिता से उनका घनिष्ठ संबंध था। उनका भी दबाव उन्हें मजबूर कर रहा था।

हुआ वही जो जुलेखा के वालिद साहब की पसंद था। लड़के वाले, लड़की वालों की तरह ब्याहने आए। इस तरह सैयदों की लड़की, कुंजड़-कसाइयों के घर ब्याही गई।

एक दिन जुलेखा के एक रिश्तेदार बैंक में किसी काम से आए। लतीफ साहब को पहचाना उन्होंने। केबिन के बाहर उनके नाम की तख्ती पर साफ-साफ लिखा था - 'एम. एल. कुरैशी, शाखा प्रबंधक'

लतीफ साहब ने आगंतुक रिश्तेदार को बैठने का इशारा किया। घंटी मार कर चपरासी को चाय लाने का हुक्म दिया।

आगंतुक निस्संदेह धनी मानी व्यक्ति थे तथा फायनेंस के सिलसिले में बैंक आए थे।

लतीफ साहब ने सवालिया नजरों से उन्हें देखा।

वे हड़बड़ाए। गला खँखारकर पूछा - 'आप हाजी सैयद अब्दुल सत्तार साहब के दामाद हुए न?'

'हाँ, कहिए।' लतीफ साहब का माथा ठनका।

सैयद शब्द के अतिरिक्त जोर दिए जाने को भली-भाँति समझ रहे थे वह।

'हाँ, मैं उनका रिश्तेदार हूँ। पहले गुजरात में सेटल था, आजकर इधर ही किस्मत आजमाना चाह रहा हूँ। आपको निकाह के वक्त देखा था। नेम-प्लेट देख कर घबराया, किंतु आपके बड़े बाबू तिवारी ने बताया कि आपकी शादी शहडोल के हाजी साहब के यहाँ हुई तो मुतमइन हुआ।' आगंतुक सफाई दे रहा था।

फिर दाँत निपोरते हुए आगंतुक ने कहा - 'आप तो अपने ही हुए!'

आगंतुक के स्वर में आदर, आत्मीयता और नाटकीयता का समावेश था।

मुहम्मद लतीफ कुरैशी साहब का सारा वजूद रुई की तरह जलने लगा। पलक झपकते ही राख का ढेर बन जाते कि इससे पूर्व स्वयं को सँभाला और आगंतुक का काम आसान कर दिया।

एम.एल. लतीफ साहब को अच्छी तरह पता था कि मुहम्मद लतीफ कुरैशी के बदन को दफनाया तो जा सकता है किंतु उनके नाम के साथ लगे 'कुरैशी' को वह कतई नहीं दफना सकते हैं।